1939D Eye of the storm: Dispute about credit for intellectual work

Hitecchu (November 1944) p. 7-8

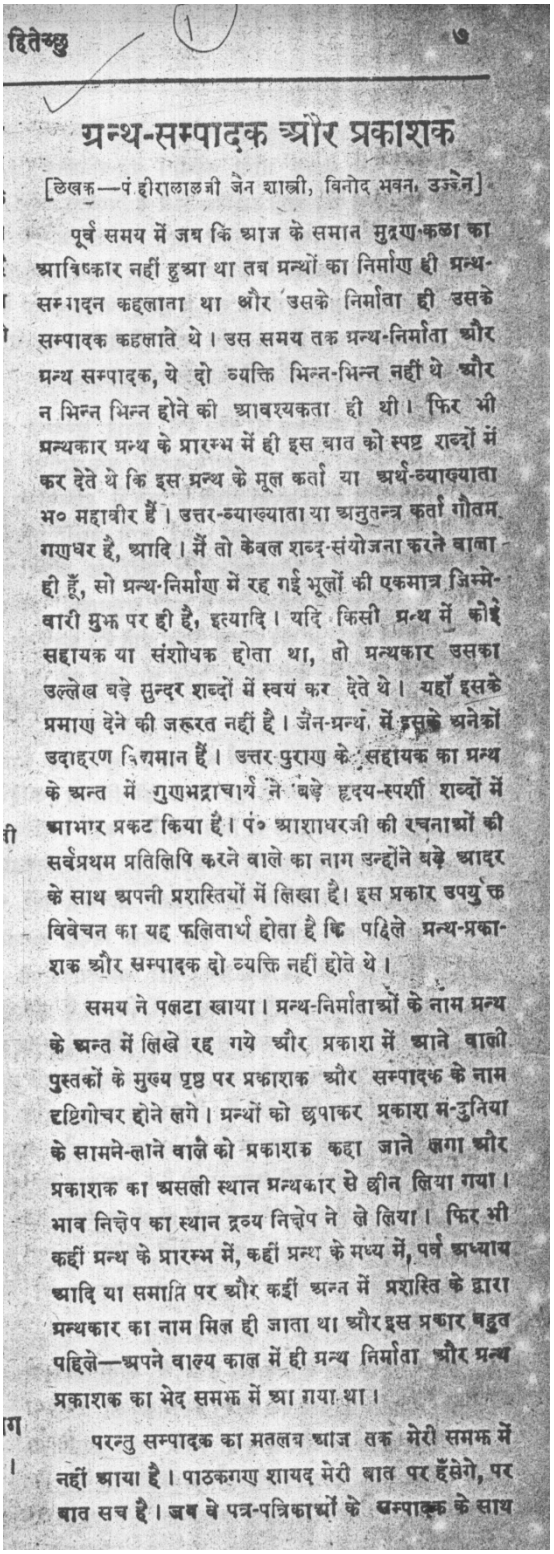

ग्रन्थ-सम्पादक और प्रकाशक

[लेखक—पं. हीरालालजी जैन शास्त्री, विनोद भवन, उज्जैन]

पूर्व समय में जब कि आज के समान मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब ग्रन्थों का निर्माण ही ग्रन्थ-सम्पादन कहलाता था और उसके निर्माता ही उसके सम्पादक कहलाते थे। उस समय तक ग्रन्थ-निर्माता और ग्रन्थ सम्पादक, ये दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न नहीं थे और न भिन्न भिन्न होने की आवश्यकता ही थी। फिर भी ग्रन्थकार ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इस बात को स्पष्ट शब्दों में कर देते थे कि इस ग्रन्थ के मूल कर्ता या अर्थ-व्याख्याता भ० महावीर हैं। उत्तर-व्याख्याता या अनुतन्त्र कर्ता गौतम गणधर है, आदि। मैं तो केवल शब्द-संयोजना करने वाला ही हूँ, सो ग्रन्थ-निर्माण में रह गई भूलों की एकमात्र जिम्मेवारी मुझ पर ही है, इत्यादि। यदि किसी ग्रन्थ में कोई सहायक या संशोधक होता था, तो ग्रन्थकार उसका उल्लेख बड़े सुन्दर शब्दों में स्वयं कर देते थे। यहाँ इसके प्रमाण देने की जरूरत नहीं है। जैन-ग्रन्थ में इसके अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। उत्तर-पुराण के सहायक का ग्रन्थ के अन्त में गुणभद्राचार्य ने बड़े हृदय-स्पर्शी शब्दों में आभार प्रकट किया है। पं० आशाधरजी की रचनाओं की सर्वप्रथम प्रतिलिपि करने वाले का नाम उन्होंने बड़े आदर के साथ अपनी प्रशस्तियों में लिखा है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन का यह फलितार्थ होता है कि पहिले ग्रन्थ-प्रकाशक और सम्पादक दो व्यक्ति नहीं होते थे।

समय ने पलटा खाया। ग्रन्थ-निर्माताओं के नाम ग्रन्थ के अन्त में लिखे रह गये और प्रकाश में आने वाली पुस्तकों के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशक और सम्पादक के नाम दृष्टिगोचर होने लगे। ग्रन्थों को छपाकर प्रकाश में-दुनिया के सामने-लाने वाले को प्रकाशक कहा जाने लगा और प्रकाशक का असली स्थान ग्रन्थकार से छीन लिया गया। भाव निक्षेप का स्थान द्रव्य निक्षेप ने ले लिया। फिर भी कहीं ग्रन्थ के प्रारम्भ में, कहीं ग्रन्थ के मध्य में, पर्व अध्याय आदि या समाप्ति पर और कहीं अन्त में प्रशस्ति के द्वारा ग्रन्थकार का नाम मिल ही जाता था। और इस प्रकार बहुत पहिले—अपने बाल्य काल में ही ग्रन्थ निर्माता और ग्रन्थ प्रकाशक का भेद समझ में आ गया था।

परन्तु सम्पादक का मतलब आज तक मेरी समझ में नहीं आया है। पाठकगण शायद मेरी बात पर हँसेंगे, पर बात सच है। जब वे पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक के साथ

ग्रन्थ-सम्पादक की तुलना करेंगे—तो उन्हें भी मेरे समान ही दुविधा में पड़ जाना पड़ेगा। पत्र-पत्रिकाओं में कहीं मुख्य पृष्ठ पर, कहीं टाईटिल पेज के पश्चात् और कहीं अन्त में सम्पादक का नाम रहने पर भी प्रत्येक लेख, कविता या कहानी के लेखकों का नाम लेखक, अनुवादक, संग्राहक आदि आदि के रूप में पृथक् पाया जाता है पर ग्रन्थ-सम्पादन में यह बात कहीं मिलेगी स्पष्ट, तो कहीं मिलेगी अस्पष्ट, तो कहीं बिलकुल सफाचट।

कहीं सम्पादक का अर्थ यदि छपाई सम्बन्धी व्यवस्था करना, टाइपों का निर्णय करना, प्रूफ संशोधन करना और प्रेस कापी करना आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है, तो कहीं टिप्पणी-दाता, पाई जाने वाली प्रतियों के अशुद्ध पाठों के निर्णायक, और परिशिष्ट आदि बनाने वाले के रूप में दर्शन होता है, कहीं अनुवादक, प्रस्तावना लेखक आदि के रूप में उसे लिखा पाते हैं। कहने का मतलब यह है कि कहीं भी सम्पादक का कोई एक असंदिग्ध अर्थ नहीं है।

सब से बड़ी आश्चर्य की बात तो मुझे यह लगती है कि जो स्थान ग्रन्थ के मूल-लेखक को मिलना चाहिये था वह आज सम्पादक को मिल रहा है। जहाँ टाइटिल पेज, कव्हर या मुख पृष्ठ पर ग्रन्थकार का नाम ग्रन्थनाम के साथ देना न्यायोचित एवं कृतज्ञता द्योतक है वहाँ आज अपनाई जाने वाली प्रथा मुझे उसके विरुद्ध लगती है। इतना ही नहीं, यह प्रथा एक भारी भ्रमोत्पादक भी सिद्ध हो रही है और उसका प्रमाण हमें मिलता है मंदिरों एवं सरस्वती भवनों की ग्रन्थ-सूचियों में। मैंने कई जगह ग्रन्थकार के टीकाकार और अनुवादक के नाम के बदले सम्पादकों के नाम लिखे देखे हैं। जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सर्व साधारण जनता अभी तक सम्पादक और प्रकाशक का ठीक अर्थ नहीं समझ सकी है। उक्त बात का सब से बड़ा प्रमाण मुझे मिला है हाल ही की घटनाओं से। जब कि बड़े बड़े विद्वानों, ब्रह्मचारियों, और साधुओं तक ने षट्खंडागम धवल सिद्धान्त के सम्पादक को उसका अनुवादक समझा है।

इस भ्रम के निवारण करने के लिये अत्यावश्यक हो गया है कि सम्पादक और प्रकाशक की स्पष्ट व्याख्या बनाली जाय और साथ ही उसके स्थान आदि का निर्णय कर लिया जाय जिससे वर्तमान में दिखाई देने वाली गड़बड़ी दूर हो और सभी प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों पर सम्पादक, प्रकाशक आदि की एकरूपता के दर्शन हो सके। इस विषय में मेरी राय इस प्रकार है—

१—मुख पृष्ठ और राइपर पर-ग्रन्थ और ग्रन्थकार का ही नाम होना चाहिये, वहां न सम्पादक के नाम की जरूरत है और न, प्रकाशक के नाम की।

२—टाइटिल पेज पर—ग्रन्थ-नाम, प्रकाशन-समय और मूल्य होना चाहिये, इससे अधिक कुछ नहीं।

३—टाइटिल पेज की पीठ पर उससे आगे के स्वतन्त्र पत्र पर सम्पादक, अनुवादक, टिप्पणीदाता, परिशिष्ट, निर्माता, मूलपाठ-संशोधक अर्थ-संशोधक, प्रेस कापी कर्ता प्रकाशक, मुद्रक आदि की स्पष्ट सूची रहनी चाहिये।

यदि नं० ३ में दी गई समस्त बातों का कर्त्ता धर्त्ता एक ही व्यक्ति हो, तो टाइटिल पेज पर सम्पादक का नाम दिय जा सकता है। वस्तुतः सच्चा सम्पादक उसे ही मानना चाहिए।

मेरी राय में उक्त व्यवस्था बहुत सुन्दर होगी। आज सिनेमा संसार में भी यही बात दिखाई देती है। खेल प्रारंभ के सर्वप्रथम खेल का नाम और उसके निर्माण करने वाली कम्पनी का नाम बताया जाता है। उसके बाद उसके डाईरेक्टर, दिग्दर्शक, कहानी लेखक, संवाद-लेखक गायन, नृत्य आदि विभाग के अधिकारियों के और उसके बाद पात्रों की सूची दिखाई जाती है। इससे दर्शक को उस खेल के विषय में सभी बातों का स्पष्ट निर्णय हो जाता है। साथ ही खेल देखते हुए दर्शकों को व्यक्तिगत विशेषताओं का भी परिज्ञान हो जाता है और समालोचकों को ठीक-ठीक समालोचना करने का भी अवसर प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त उनसे की जाने वाली गुणदोष समीक्षा द्वारा प्रत्येक अपने विभाग का अधिकारी या अभिनेता अपनी कमजोरियों को दूर कर उन्नति के पथ पर अग्रगामी होना हुआ दिखाई देता है।

आशा है हमारे विद्वान-पाठक इस विषय पर अपने विचारों को प्रकट ग्रन्थ-सम्पादन में एक व्यवस्था लाने की कोशिश करेंगे और सम्पादकगण भी 'सम्पादक' की स्पष्ट व्याख्या कर जनताके भ्रम को दूर करने का कष्ट उठावेंगे।

नोटः—यह लेख आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व लिखा गया था। तभी और उसके एक वर्ष बाद कुछ पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा भी गया था मगर उन पत्रों के सम्पादकों की कृपा से वह छप नहीं सका और विवश हो मैंने उसे वापिस मंगा लिया। एक दो साधारण से संशोधन परिवर्धन के साथ वही लेख अविकल रूप से अब की बार पूर्व से भिन्न अन्य पत्रों में प्रकाशित किया जा रहा है।

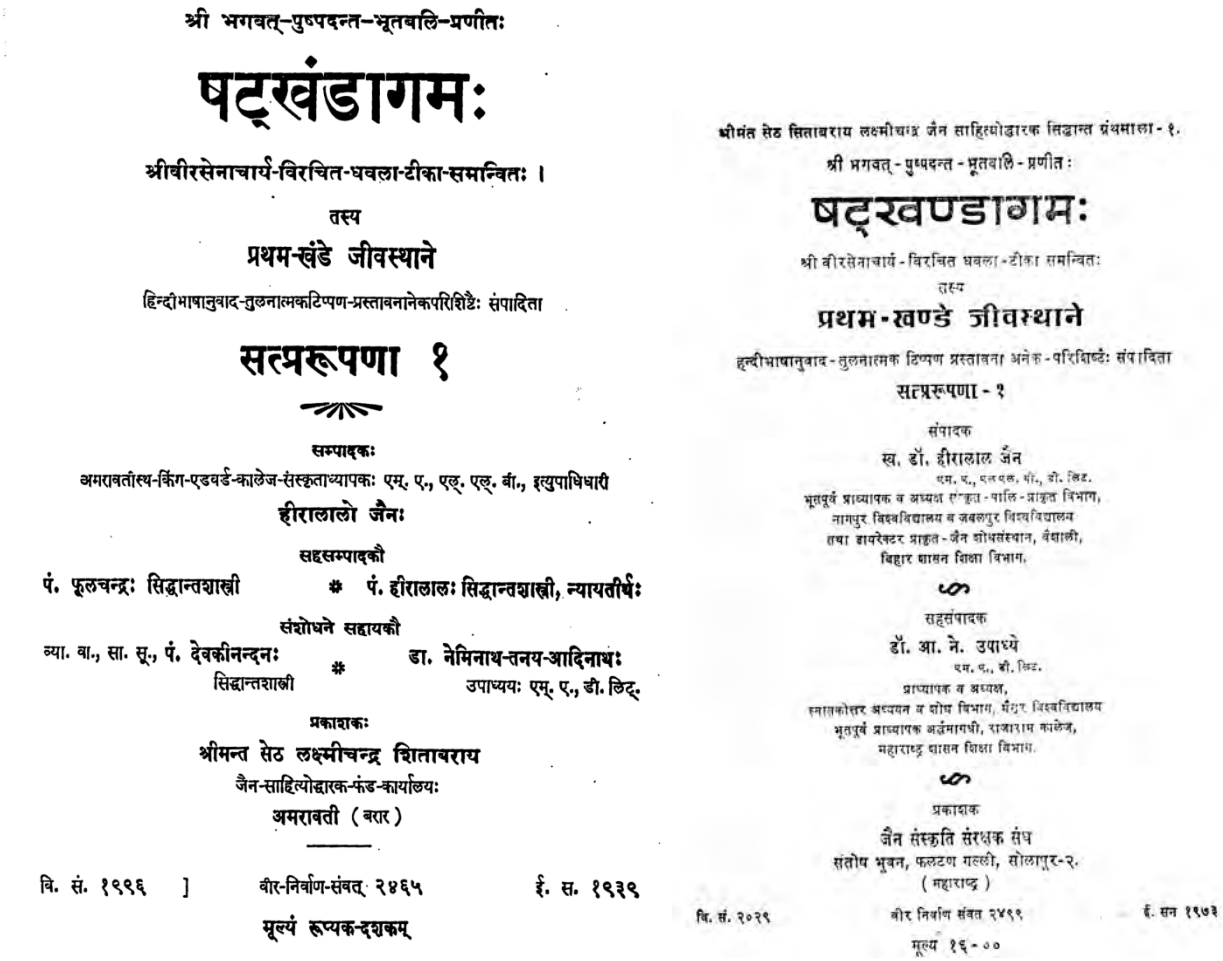

श्री भगवत्–पुष्पदन्त–भूतबलि–प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः संपादिता

सत्प्ररूपणा १

सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंग-एडवर्ड-कालेज-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकौ

पं. फूलचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री * पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः सिद्धान्तशास्त्री * डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः उपाध्ययः एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र शितावराय

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. १९९६] वीर-निर्वाण-संवत् २४६५ ई. स. १९३९

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

श्रीमंत सेठ सितावराय लक्ष्मीचन्द्र जैन साहित्योद्धारक सिद्धान्त ग्रंथमाला - १.

श्री भगवत् - पुष्पदन्त - भूतबलि - प्रणीत :

षट्खण्डागमः

श्री वीरसेनाचार्य - विरचित धवला - टीका समन्वितः

तस्य

प्रथम - खण्डे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद - तुलनात्मक टिप्पण प्रस्तावना अनेक - परिशिष्टैः संपादिता

सत्प्ररूपणा - १

संपादक

स्व. डॉ. हीरालाल जैन

एम. ए., एलएल. बी., डी. लिट.

भूतपूर्व प्राध्यापक व अध्यक्ष संस्कृत - पालि - प्राकृत विभाग,

नागपुर विश्वविद्यालय व जबलपुर विश्वविद्यालय

तथा डायरेक्टर प्राकृत - जैन शोधसंस्थान, वैशाली,

बिहार शासन शिक्षा विभाग.

सहसंपादक

डॉ. आ. ने. उपाध्ये

एम. ए., डी. लिट.

प्राध्यापक व अध्यक्ष,

स्नातकोत्तर अध्ययन व शोध विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय

भूतपूर्व प्राध्यापक अर्द्धमागधी, राजाराम कालेज,

महाराष्ट्र शासन शिक्षा विभाग.

प्रकाशक

जैन संस्कृति संरक्षक संघ

संतोष भुवन, फलटण गल्ली, सोलापुर-२.

(महाराष्ट्र)

वि. सं. २०२९ वीर निर्वाण संवत २४९९ ई. सन १९७३

मूल्य १६ - ००

First and second pages of the first and second edition of Satprarupana part of Shatkhandagam published in 1939 and 1973. Also note the difference between the Hindi (top) and English (bottom) version. The third edition contains only the name of Pandit Phool Chand.

THE

ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALĪ

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VIRASENA

VOL. I

SATPRARŪPAṆĀ

Edited

with introduction, translation, notes, and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,

C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Phoolchandra Siddhānta Shāstrī.

※

Pandit Hiralal Siddhānta Shāstrī Nyāyatīrtha.

With the cooperation of

Pandit Devakinandan Siddhānta Shāstrī

※

Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Published by

Shrimant Seth Laxmichandra Shitabrai,

Jain Sāhitya Uddhāraka Fund Karyalaya.

AMRAOTI (Berar).

1939

Price rupees ten only.

Shreemant Seth Sitab Rai Laxmichandra Jain

Sahityodharak Sidhant Granthamala

Shree Bhagawat Pushpadant Bhutabali Pranit

SHATKHANDAGAM

Shree Veersenacharya Virachit Dhavala Teeka Samanwita

FIRST VOLUME

JEEVASTHAN

Hindi Bhashanuwad

Tulanatmak Tippan Prastavana Anek Parishisht Sampadita

SAT-PRARUPANA

Sampadak

Late Dr. Hiralal Jain

M. A., LL. B., D. Litt.

Bhutapurva Pradhyapak and Adhyaksha-

Sanskrit-Prakrit Vibhag-Nagpur Vishwa Vidyalaya,

Director-Prakrit Jain Shodha Samsthan, Vaishali,

Bihar Shasan Shiksha Vibhag.

⊙

Saha-Sampadak

Dr. A. N. Upadhye

M. A., D. Litt.

Pradhyapak and Adhyaksha

Snatakottar Adhyayan and Shodha Vibhag-Mysore Vishwa Vidyalaya.

Bhutpurva Pradhyapak Ardha Magadhi-Rajaram College

Maharashtra Shasan Shiksha Vibhag.

⊙

Prakashak

Jain Sanskriti Samrakshak Sangha

Santosh Bhavan, Phaltan Galli, Sholapur-2.

(Maharashtra)

Vikram S. 2029 Veer Samvat 2499 **A. D. 1973**

Price : Rs. 16-00

अतएव एक सहायक स्थायी रूपसे रख लेनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। सन १९३५ में बीनानिवासी पं. वंशीधरजी व्याकरणाचार्यको मैंने बुला लिया, किन्तु लगभग एक माह कार्य करनेके पश्चात् ही कुछ गार्हस्थिक आवश्यकताके कारण उन्हें कार्य छोड़कर चले जाना पड़ा। तत्पश्चात् साढूमल (झांसी) के निवासी पं. हीरालालजी शास्त्री न्यायतीर्थको बुलानेकी बात हुई। वे प्रथम तीन वर्ष उज्जैनमें रायबहादुर सेठ लालचन्दजीके यहां रहते हुए ही कार्य करते रहे। किन्तु गत जनवरीसे वे यहां बुला लिये गये और तबसे वे इस कार्यमें मेरी सहायता कर रहे हैं। उसी समयसे बिना निवासी पं. फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकी भी नियुक्ति करली गई है और वे भी अब इसी कार्यमें मेरे साथ तत्परतासे संलग्न हैं। तथा व्यक्तिगत रूपसे यथावसर अन्य विद्वानोंका भी परामर्श लेते रहे हैं।

प्राकृतपाठ संशोधनसम्बंधी नियम हमने प्रेस कापीके दो सौ पृष्ठ राजाराम कालेज कोल्हापुरके अर्धमागधीके प्रोफेसर, हमारे सहयोगी व अनेक प्राकृत ग्रंथोंका अत्यन्त कुशलतासे सम्पादन करनेवाले डाक्टर ए. एन्. उपाध्येके साथ पढ़कर निश्चित किये। तथा अनुवादके संशोधनमें जैनधर्मके प्रकाण्ड विद्वान सि. शा. पं. देवकीनन्दनजीका भी समय समय पर साहाय्य लिया गया। इन दोनों सहयोगियोंकी इस निर्व्याज सहायताका मुझ पर बड़ा अनुग्रह है। शेष समस्त सम्पादन, प्रूफ शोधनादि कार्य मेरे स्थायी सहयोगी पं. हीरालालजी शास्त्री व पं. फूलचन्द्रजी शास्त्रीके निरन्तर साहाय्यसे हुआ है, जिसके लिये मैं उन सबका बहुत कृतज्ञ हूं। यदि इस कृतिमें कुछ अच्छाई व सौन्दर्य हो तो वह सब इसी सहयोगका ही सुफल है।

Figure II-4A. Excerpt from the preface of the 1939 Edition of Satprarupana (see Figures 4B and C) signed (November 1, 1939) by Professor Hiralal Jain.

अनेकान्त प्रकाशनार्थ

ग्रन्थ-प्रकाशक और सम्पादक

(पं० हीरालाल जैन शास्त्री, अमरावती)

पूर्व समयमें — जब कि आजके समान मुद्रण-कलाका आविष्कार नहीं हुआ था, तब ग्रन्थोंका निर्माण ही ग्रन्थ-सम्पादन कहलाता था और उसके निर्माता ही उसके सम्पादक कहलाते थे। उस समय तक ग्रन्थ-निर्माता और ग्रन्थ-सम्पादक दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न नहीं थे और न भिन्न-भिन्न होनेकी आवश्यकता ही थी। फिर भी ग्रन्थकार ग्रन्थके प्रारम्भमें ही इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर देते थे कि इस ग्रन्थके मूलकर्ता या अर्थव्याख्याता भ० महावीर हैं। उत्तरव्याख्याता या अनुतंत्रकर्ता गौतम गणधर हैं, आदि। मैं तो केवल शब्द-संयोजना करनेवाला ही हूँ, सो भी यथाशक्ति ग्रन्थ-निर्माणमें रह गई भूलोंको एकमात्र जिनवाणी सुधार लेती है, इत्यादि। यदि किसी ग्रन्थमें कोई सहायक या संशोधक होता था, तो ग्रन्थकार उसका उल्लेख बड़े सुन्दर शब्दोंमें स्वयं कर देते थे। यहां इसके प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं है। जैन-ग्रन्थोंमें इसके अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। उत्तरपुराणके सहायकका ग्रन्थके अन्तमें गुणभद्राचार्यने बड़े हृदय-स्पर्शी शब्दोंमें स्मरण किया है। पं० आशाधरजीकी रचनाओंकी सर्वप्रथम प्रतिलिपि करनेवालेका नाम उन्होंने बड़े आदरके साथ अपनी प्रशस्तियोंमें लिखा है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनका यह फलितार्थ होता है कि पहले ग्रन्थ-प्रकाशक और सम्पादक दो व्यक्ति नहीं होते थे।

समयने पलटा खाया। ग्रन्थ-निर्माताओंके नाम ग्रन्थके अन्तमें छिपके रह गये और प्रकाशमें आनेवाली पुस्तकोंके मुख-पृष्ठपर प्रकाशक और सम्पादकके नाम दृष्टिगोचर होने लगे। ग्रन्थको छपाकर प्रकाशमें — दुनियाके सामने — लानेवालेको प्रकाशक कहा जाने लगा और प्रकाशकोंका असली स्थान ग्रन्थकारसे छीन लिया गया। भावनिक्षेपका स्थान द्रव्यनिक्षेपने ले लिया। फिर भी कहीं ग्रन्थके प्रारम्भमें, कहीं ग्रन्थके मध्यमें पर्व अध्याय आदिकी समाप्ति पर, और कहीं अन्तमें प्रशस्तिके द्वारा ग्रन्थकारका नाम मिल ही जाता था; और इस प्रकार बहुत पहले — अपने बाल्यकालमें ही ग्रन्थ-निर्माता और ग्रन्थ-प्रकाशकका भेद समझमें आ गया था। परन्तु सम्पादकका मतलब आज तक भी मेरी समझमें नहीं आया है। पाठकगण शायद मेरी बातपर हँसेंगे, पर बात सत्य है। सब जगहके पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकके साथ ग्रन्थ-सम्पादककी तुलना करेंगे — तो उन्हें भी मेरे समान ही दुविधामें पड़ जाना पड़ेगा। पत्र-पत्रिकाओंमें कहीं मुखपृष्ठ पर, कहीं टाइटिल पेजके पश्चात् और कहीं अन्तमें सम्पादकका नाम रहने पर भी प्रत्येक लेख, कविता या कहानीके लेखकोंका नाम अलग, अनुवादक, संग्राहक आदिके रूपमें पृथक् पाया जाता है। पर ग्रन्थ-सम्पादनमें यह बात कहीं मिलेगी स्पष्ट, तो कहीं मिलेगी अस्पष्ट, तो कहीं बिलकुल सफाचट!

कहीं सम्पादकका अर्थ मात्र छपाई सम्बन्धी व्यवस्था करना, टाइपोंका निर्णय करना, प्रूफ-संशोधन करना और प्रेस कापी करना आदिके रूपमें दृष्टिगोचर होता है, तो कहीं टिप्पणी-दाता, पाई जानेवाली प्रतियोंके अशुद्ध पाठोंके निर्णायक, और परिशिष्ट आदि बनानेवालेके रूपमें दर्शित होता है, कहीं अनुवादक, प्रस्तावना-लेखक आदिके रूपमें उसका अर्थ दिखाई देता है, तो कहीं सभी कुछके रूपमें उसे लिया पाते हैं। कहनेका मतलब यह कि कहीं भी सम्पादकका कोई एक असंदिग्ध अर्थ नहीं है।

सबसे बड़ी आश्चर्यकी बात तो मुझे यह लगती है कि जो स्थान ग्रन्थके मूललेखकको मिलना चाहिए था वह आज सम्पादकको मिल रहा है। जहां टाइटिल पेज, कवर या मुख पृष्ठ पर ग्रन्थकारका नाम ग्रन्थ-नामके साथ देना न्यायोचित एवं कृतज्ञता-द्योतक है, वहां आज अपनाई जानेवाली प्रथा मुझे उसके विरुद्ध लगती है। इतना ही नहीं, यह प्रथा एक भारी भ्रमोत्पादक भी सिद्ध हो रही है और उसका प्रमाण हमें मिलता है मन्दिरों एवं सरस्वती-भवनोंकी ग्रन्थ-सूचियोंमें। जहां कई जगह ग्रन्थकारके नामके बदले सम्पादकोंके नाम लिखे मिलते हैं। [illegible] जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सर्वसाधारण जनता अभी तक सम्पादकका ठीक अर्थ नहीं समझ सकी है।

इस भ्रमके निवारण करनेके लिए आवश्यक हो गया है कि सम्पादक और प्रकाशक की स्पष्ट व्याख्या बतला दी जाय और साथ ही उनके स्थान आदिका निर्णय कर लिया जाय, जिससे वर्तमानमें दिखाई देनेवाली गड़बड़ी दूर हो और सभी प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोंपर सम्पादक, प्रकाशक आदिकी एक रूपता के दर्शन हो सकें। इस विषयमें मेरी राय इस प्रकार है —

(१) मुख पृष्ठ और टाइटल पर — ग्रन्थ और ग्रन्थकार का ही नाम होना चाहिए, वहां न सम्पादक के नामकी जरूरत है और न प्रकाशक के नामकी।

(२) टाइटिल पेज पर — ग्रन्थमाला, प्रकाशक-नाम, प्रकाशन-समय और मूल्य होना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं।

(३) टाइटिल पेजके पृष्ठ पर या उसके आगेके स्वतंत्र पत्र पर — सम्पादक, अनुवादक, टिप्पणीदाता, परिशिष्ट निर्माता, मूलपाठ संशोधक, अर्थ संशोधक, प्रूफ संशोधक, प्रेसकापी कर्ता, प्रकाशक, मुद्रक आदिकी स्पष्ट-सूची रहनी चाहिए।

मेरी रायमें उक्त व्यवस्था बहुत सुन्दर होगी। आज सिनेमा संसारमें भी यही बात दिखाई देती है। खेल आरम्भके सर्वप्रथम खेलका नाम और उसके निर्माण करनेवाली कम्पनी का नाम बताया जाता है। उसके बाद उसके डाइरेक्टर, दिग्दर्शक, कहानी-लेखक, संवाद-लेखक, गायन, नृत्य, आदि विभागके अधिकारियों और उसके बाद पात्रोंकी सूची दिखाई जाती है। इससे दर्शकोंको उस खेलके विषयमें सभी बातोंका स्पष्ट निर्णय हो जाता है। साथ ही खेल देखते हुए दर्शकोंको व्यक्ति-गत विशेषताओंका भी परिज्ञान हो जाता है और समालोचकोंको ठीक-ठीक समालोचना करनेका भी अवसर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनसे की जाने वाली गुण-दोष समीक्षा द्वारा प्रत्येक विभागका अधिकारी या अभिनेता अपनी कमजोरियोंको दूर कर उन्नतिके पथपर अग्रगामी होता हुआ दिखाई देता है।

आशा है हमारे विद्वान पाठक इस विषयपर अपने विचार प्रकट कर साहित्य-सम्पादनमें एक व्यवस्था लानेकी कोशिश करेंगे और सम्पादक, प्रकाशक या सम्पादककी स्पष्ट व्याख्या बनाकर निर्वल एकरूपता लानेका कष्ट उठावेंगे।

श्री

बनारस
८-३-४६

श्रीमान् पं. हीरालाल जी

जयजिनेन्द्र।

पत्र मिला, आपका लेख आजकी डाक से रवाना कर दिया है। वर्तमान में, प्रायः और डा. हीरालाल के बीच में जो कुछ गुजरा है उससे मुझे खेद है और इसी लिये इस चर्चा को स्थान देना उपयुक्त नहीं समझा। डा. सा. के वक्तव्य को भी बाद में मेरी रुकवाने की इच्छा हुई लेकिन इतने में मथुरा पहुंचा इतने वह छप चुका था। मैं रात ही मथुरा से लौटा हूं।

आपका
कैलाशचन्द

ग्रन्थ – प्रकाशक और संपादक

(पं. हीरालाल जैन शास्त्री, अमरावती)

पूर्व समय में - जब कि आज के समान मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब ग्रन्थों का निर्माण ही उसके ग्रन्थ सम्पादन कहलाता था और उसके निर्माता ही उसके सम्पादक या प्रकाशक कहलाते थे। उस समय तक ग्रन्थ-प्रकाशक और ग्रन्थ सम्पादक ये दो व्यक्ति भिन्न भिन्न नहीं थे और न भिन्न भिन्न होने की आवश्यकता ही थी। फिर भी ग्रन्थकार ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इस बात को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर देते थे कि इस ग्रन्थ के मूलकर्ता या अर्थव्याख्याता भ० महावीर हैं। उत्तर-व्याख्याता या अनुतंत्र कर्ता गौतम गणधर हैं आदि। मैं तो केवल शब्द संयोजना करने वाला ही हूं और ग्रन्थ निर्माण में रह गई भूलों की एक मात्र जिम्मेवारी मुझ पर ही है, इत्यादि। यदि किसी ग्रन्थ में कोई सहायक या संशोधक होता था तो ग्रन्थकार उसका उल्लेख बड़े सुन्दर शब्दों में स्वयं कर देते थे। यहां इसके प्रमाण देने की जरूरत नहीं है। जैन-ग्रन्थों में इसके अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। उत्तरपुराण के सहायकों का ग्रन्थ के अन्त में गुणभद्राचार्य ने बड़े हृदयस्पर्शी शब्दों में स्मरण किया है। पं. आशाधरजी की रचनाओं की सर्व प्रथम प्रतिलिपि करनेवाले का नाम उन्होंने बड़े आदर के साथ अपनी प्रशस्ति में लिखा है। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन का यह फलितार्थ होता है कि पहले ग्रन्थ प्रकाशक और सम्पादक दो व्यक्ति नहीं होते थे।

समय ने पलटा खाया। ग्रन्थ निर्माताओं के नाम ग्रन्थ के अन्त में लिखे रह गये और प्रकाश में आनेवाली पुस्तकों के मुखपृष्ठ पर प्रकाशक और सम्पादक के नाम दृष्टि गोचर होने लगे। ग्रन्थों को छपाकर प्रकाश में - दुनिया के सामने - लाने वाले को प्रकाशक कहा जाने लगा और प्रकाशक को असली स्थान ग्रन्थकार से छीन लिया गया। मानो निर्माता का स्थान प्रकाशक ने अपने ले लिया। फिर भी कहीं ग्रन्थ के प्रारम्भ में, कहीं ग्रन्थ के मध्य में पर्व या अध्याय आदि की समाप्ति पर, और कहीं अन्त में प्रशस्ति के द्वारा ग्रन्थकार का नाम मिल ही जाता था और इस प्रकार बहुत पहले अपने बाल्यकाल में ही ग्रन्थ निर्माता और ग्रन्थ-प्रकाशक का भेद समझ में आ गया था। परन्तु सम्पादक का मतलब आज तक भी मेरी समझ में नहीं आया है। पाठक गण शायद मेरी इस बात पर हंसेंगे, पर बात सच है। जब वे पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक के साथ ग्रन्थ-सम्पादक की तुलना करेंगे तो उन्हें भी मेरे समान ही दुविधा में पड़ जाना पड़ेगा। पत्र-पत्रिकाओं में कहीं मुखपृष्ठ पर, कहीं टाइटिल पेज के पश्चात और कहीं अन्त में सम्पादक का नाम रहने पर भी प्रत्येक लेख, कविता या कहानी के लेखकों का नाम लेखक, अनुवादक या संग्राहक आदि के रूप में पृथक् पाया जाता है पर ग्रन्थ सम्पादन में यह बात कहीं मिलेगी स्पष्ट, तो कहीं मिलेगी अस्पष्ट, तो कहीं बिलकुल मिलेगी नहीं।

कहीं सम्पादक का अर्थ प्रति छपाई सम्बन्धी व्यवस्था करना, टाइपों का निर्णय करना, प्रूफ संशोधन करना और प्रेस कापी करना आदि के रूप में दृष्टि गोचर होता है तो कहीं टिप्पणी-प्रदान, पाई जाने वाली प्रतियों के अशुद्ध पाठों के निर्णय और परिशिष्ट आदि बनाने वाले के रूप में दर्शन होता है। कहीं अनुवादक, प्रस्तावना-लेखक आदि के रूप में उसका अर्थ दिखाई देता है तो कहीं सभी कुछ के रूप में उसे लिया जाता है। कहने का मतलब यह कि कहीं भी सम्पादक का कोई एक असंदिग्ध अर्थ नहीं है। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात तो मुझे यह लगती है कि जो स्थान ग्रन्थ के कर्ता को मिलना चाहिये था वह आज सम्पादक को मिल रहा है जहां टाइटिल पेज, कवर या मुखपृष्ठ पर ग्रन्थकार का नाम

ग्रन्थ-नाम के साथ देना न्यायोचित एवं कृतज्ञताद्योतक है। जहां आज अपनाई जाने वाली प्रथा मुझे उसके विरुद्ध लगती है। इतना ही नहीं, यह प्रथा एक भारी भ्रमोत्पादक भी सिद्ध हो रही है। और उसका प्रमाण हमें मिल रहा है मन्दिरों एवं सरस्वती-भवनों की ग्रन्थ सूचियों में। जहां कई जगह ग्रन्थकार नाम के बदले सम्पादकों के नाम लिखे मिलते हैं। जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सर्वसाधारण जनता अभी तक सम्पादक और प्रकाशक का ठीक अर्थ नहीं समझ सकी है।

इस भ्रम के निवारण करने के लिये आवश्यक हो गया है। कि सम्पादक और प्रकाशक की स्पष्ट व्याख्या बना ली जाय और साथ ही उसके स्थान आदि का निर्णय कर लिया जाय, जिससे वर्तमान में दिखाई देने वाली गड़बड़ी दूर हो और सभी प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों पर सम्पादक, प्रकाशक आदि की एकरूपता के दर्शन हो सकें। इस विषय में मेरी राय इस प्रकार है —

(1) मुख पृष्ठ और टाइटल पेज पर ग्रन्थ और ग्रन्थकार का ही नाम होना चाहिये। वहां न सम्पादक के नाम की जरूरत है और न प्रकाशक के नाम की।

(2) टाइटिल पेज पर — ग्रन्थ-नाम, प्रकाशक-नाम, प्रकाशन-समय और मूल्य होना चाहिये, इससे अधिक कुछ नहीं।

(3) टाइटिल पेज के पृष्ठ पर या उससे आगे के स्वतंत्र पत्र पर - सम्पादक, अनुवादक, टिप्पणीदाता, परिशिष्ट-निर्माता, मूलपाठ-संशोधक, अर्थ-संशोधक, प्रूफ-संशोधक, प्रेस कापी-कर्ता, प्रकाशक, मुद्रक आदि की स्पष्ट सूची रहना चाहिये।

मेरी राय में उक्त व्यवस्था बहुत सुंदर होगी। आज सिनेमा संसार में भी यही बात दिखाई देती है। खेल प्रारम्भ से सर्व प्रथम खेल का नाम और उसके निर्माण करने वाली व्यक्ति कम्पनी का नाम बताया जाता है। उसके बाद उसके डाइरेक्टर, डिरेक्टर, कहानी-लेखक, संवाद-लेखक, गायन, नृत्य आदि विभाग के अधिकारियों के, और उसके बाद पात्रों की सूची दिखाई जाती है। इससे दर्शकों को उस खेल के विषय में सभी बातों का स्पष्ट निर्णय हो जाता है। साथ ही खेल देखते हुए दर्शकों को व्यक्तिगत विशेषताओं का भी परिज्ञान हो जाता है और समालोचकों को ठीक ठीक समालोचना करने का भी अवसर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनसे की जाने वाली गुण-दोष सम्बन्धी समीक्षा द्वारा प्रत्येक अपने विभाग का अधिकारी या अभिनेता अपनी कमजोरियों को दूर कर उन्नति के पथ पर अग्रगामी होता हुआ दिखाई देता है।

आशा है हमारे विद्वान पाठक इस विचार पर अपने विचार प्रकट करें साहित्य-सम्पादन में एक व्यवस्था लाने की कोशिश करेंगे और सम्पादक महोदय सम्पादक की स्पष्ट व्याख्या भी बता कर सर्वत्र एकरूपता लाने का कष्ट उठावेंगे।

धवला आफिससे मेरे सम्बन्ध-विच्छेदका
स्पष्टीकरण

जैनसमाज श्री धवलसिद्धान्तके प्रकाशमें आनेके कारण प्रो० हीरालाल जी अमरावतीसे खूब परिचित हो गई है। ~~धवलसिद्धान्तके प्रथम भागमें~~ और उसके साथ मौजूद रहनेसे मुझे भी थोड़ा बहुत जानने लगी है। अभी उस दिन (ता० ८ जून के जैनसंदेश द्वारा) जब उसको अपने प्रो० साहब की आवश्यक सूचना पढ़ी तो एकदम आश्चर्यमें आगई (जैसा कि मेरे पास आए हुए अनेकों पत्रों और अभी हालके प्रवासमें पूछे गये प्रश्नोंसे मुझे ज्ञात हुआ) जब सन्देशमें उक्त सूचना निकली तो उसके काफी समयके बाद मेरे कानोंमें कुछ अस्पष्ट भनक मित्रों द्वारा पड़ी कि आपके विषयमें जैनसन्देशमें कुछ निकला है!!! (प्रसंगवश इतना लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि जैनसमाजके पत्र-सम्पादक अभी तक इतनीसी साधारण बात भी नहीं समझ सके हैं कि जिसके विरोधमें इतनी बड़ी बात अपने पत्रमें प्रकाशित करदें और उसकी एक कापी भी उसके पास न भेजी जाय - खास कर जब कि मैं उस पत्रका ग्राहक नहीं और सन्देशके सम्पादक मेरेसे भलीभांति परिचित हैं, और खास कर उस अवस्थामें - जब कि उक्त सूचना प्रकाशित होनेके ठीक एक माह पूर्वसे मेरा एक 'ग्रन्थप्रकाशक और सम्पादक' शीर्षक लेख उनके पास प्रकाशनार्थ पहुंचा हुआ पड़ा था!!!) मैंने तत्काल प्रो० साहबके पाससे उक्त अंक मंगाया तो देखकर मैं भी दंग रह गया कि धवलसिद्धान्तका सम्पादक कहलानेवाला व्यक्ति भी इतनी ~~सफेद~~ (बिल्कुल) झूठ बोलकर इतनी नीची भूमिकापर उतर सकता है। मैं उसी दिन मुक्तागिरि दौड़ा गया जहांपर कि प्रतिष्ठासमारोहमें वे तीनों सज्जन (पं० देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री, पं० सुमेरुचंदजी शास्त्री वकील सिवनी और सेठ गोपालसाव जी चवरे कारंजा) एकत्रित थे जो कि हमारे व धवलाके ता. 9-2-43 को सम्बन्ध-विच्छेद होनेमें मध्यस्थ थे। जानेके साथ ही ~~उनसे उक्त बात कह कर~~ उन्हें उक्त अंक दिखलाया, उत्तर मिला - हम लोग अभी चले जाने की तैयारीमें हैं, आप अभी कोई प्रतिवाद पत्रोंमें न निकालिए, हम अमरावती जाकर प्रो० साहबसे ही प्रतिवाद प्रकाशित करा देंगे। मैं उनके प्रतिवादकी प्रतीक्षा करने लगा। पर [illegible] शास्त्री जी का सम्बन्ध-विच्छेद शीर्षक से प्रतिवाद [illegible] मिला, उसमें न मेरी तसल्ली हुई और [illegible] की ही।

(कारण कि सम्बन्ध विच्छेदके समय यह तय हो गया था कि किसी ओर से कोई भी समाचार पत्रोंमें न दिया जाय।)

ता. [illegible] [illegible]

[illegible] को [illegible] मालूम हो गया [illegible] [illegible] बोल [illegible] [illegible] भी हो गया है।

मेरे पास बराबर पत्र पर पत्र आते रहे हैं कि "असल मामला क्या है? और अभी हालके प्रवासमें पूछे गए प्रश्नोंने तो सारी स्थितिको समाजके सामने रखनेके लिए बाध्य कर दिया है। अतएव इतने लम्बे समयके बाद इच्छा न रहते हुए भी धवलाके सम्बन्ध-विच्छेदका असली रहस्य प्रकाशित करा रहा हूं ताकि समाजका और मेरी मानसिक स्थितिका समाधान हो सके।

पाठकगण यह बात भूले न होंगे कि प्रो० हीरालाल जीने धवलसिद्धान्तको हाथ लगानेके पूर्व जयधवलसिद्धान्तको हाथ लगाया था और उसका नमूनेके तौर पर एक फार्म मुद्रितकर लोगोंके अवलोकनार्थ भेजा था। समालोचक विद्वानोंने उसकी जैसी कुछ समालोचना की थी, उससे प्रो० सा० के हौसले सदाके लिए ठंडे होगए थे। अपनी उस झेंप मिटानेके लिए इन्होंने धवलाका काम उठाया। परन्तु वह भी कुछ दिन बाद ठंडा पड़गया, जिसका कि उल्लेख उन्होंने धवलाके प्रथम भागके प्राक्कथनमें किया है। वहीं वे यह भी लिखते हैं कि — "तत्पश्चात् मेरे बुलानेकी बात हुई और मैं प्रथम तीन वर्ष उज्जैनमें रायबहादुर सेठ लालचन्दजीके यहां रहते हुए ही कार्य करता रहा, इत्यादि। पर यथार्थ बात यह है कि प्रो० सा० के इस कार्यमें हाथ लगानेके भी चार वर्ष पूर्वसे मैंने धवलाका कार्य उठा रखा था, जिसका कि हाल मेरे प्रायः सभी परिचित मित्रोंको विदित है, और धवलाके प्रथम भागकी समालोचनामें सम्पादक जैनसंदेशने उसका इशारा भी किया था। यही कारण था कि लगातार तीन वर्ष तक इनके बुलाने पर भी मैं यहां नहीं आया और वहींसे कार्य करता रहा। जब उसके प्रेसमें देनेका ही अब समय आगया, तब उनके और प्रेमीजीके अति आग्रह और प्रेरणावश मुझे यहां आना पड़ा। यहां आनेपर प्रो० सा० की सिद्धान्त-ग्रन्थोंके अध्ययन—सम्बन्धी योग्यताका वही अनुभव हुआ — जो कि जयधवलाके मुद्रित प्रारंभिक अंशको देखने पर सभी समालोचकोंको हुआ था। जब प्रथम भाग छप गया और टाइटिल पेजपर सम्पादक आदिके नाम देनेका प्रूफ सामने आया तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि एक प्रोफेसर कहलाने वाला व्यक्ति भी इतने दुःसाहसका कार्य कर सकता है कि दूसरेके सारे परिश्रमको हड़प कर उसका एकमात्र स्वयं अधिकारी बनना चाहता है!!! फलस्वरूप मैंने उसी समय लिखित स्तीफा पेश कर दिया। भाग्यवश उसी समय धवलके प्रकाशन समारंभार्थ श्रीमान् बाबू रामलाल प्रेमी बम्बई, पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री कारंजा आदि आए हुए

और उन्होंने मध्यस्थ बनकर, मुझे दबादबूकर उक्त मामलेको किसी तरह निपटा दिया जो कि आज धवलाके टाइटिल पेजपर दिखाई देता है। तब प्रो० सा० ने अपनी नाक ऊंची रखनेके लिए ग्रन्थके ऊपरी जिल्द पर और टाइटिल पेजपर एकमात्र अपना नाम सम्पादकके रूपमें देनेका मार्ग निकाला — जो कि मुझे अत्यधिक खटका। कारण कि उस स्थानपर मैं मूलग्रन्थकारका नाम देखना चाहता था। पर कर ही क्या सकता था, क्योंकि, मेरी दृष्टिमें आनेके पूर्व इसका प्रूफ तक भी मुझे देखनेका अवसर नहीं मिला, वह छप ही चुका था और इसका कारण यह था कि उस समय प्रूफ-रीडिंग पं० फूलचन्द्रजीके ओर था। विवश होकर रह तो गया, पर यह प्रणाली मुझे अच्छी नहीं लगी। इन्हीं दिनों अन्य विद्वानों द्वारा जो न्याय आदिके महान् ग्रन्थ प्रकाशित हुए और उनपर भी वैसी कुछ पद्धति देखी — तो मुझे यह विचार रह रह कर उठने लगा कि 'प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोंकी सम्पादन-प्रणाली किस प्रकार एकसी हो।

पाठकगण शायद पूंछेंगे कि ऊपर सम्पादकका नाम देनेमें खटकने जैसी तो कोई बात नहीं थी — पर मुझे यह बात ठीक उतनी ही खटकनेवाली जंचती है जितनी कि किसी प्रतिमाका प्रतिष्ठापक या निर्मापक मूर्तिके शिर या छातीपर अपना नाम अंकित कर अपने नामका अमर प्रसार करना चाहे।

उक्त व्यवस्थाके, फलस्वरूप तथा इसी बीचमें मिले प्राप्त कई अनुभवोंके फलस्वरूप आजसे लगभग दो वर्ष पूर्व 'ग्रन्थ-सम्पादक और प्रकाशक' शीर्षक एक लेख लिखा और सत्यताका दावा करनेवाले 'अनेकान्त' पत्रमें प्रकाशनार्थ भेजा। उन्होंने उसे भेजकर प्रो० सा० से पूंछताछ शुरू की और प्रो० सा० ने उसके विरुद्ध लिखा विवश होकर मुझे यह लेख छापनेसे रोकना पड़ा। करीब आठ माहके बाद मेरा वह लेख मुझे किसी प्रकार वापिस मिल सका। इसी बीचमें प्रो० सा० के साथ काम करते हुए जो और भी नये अनुभव हुए, उन्होंने मुझे वह लेख पुनः प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया।

पाठक गण शायद पुनः पूंछ उठें कि इस बीच और कौन से नये अनुभव प्राप्त हुए? उनके समाधानार्थ मैं कुछ घटनाओंका उल्लेख किये देता हूं। (१) धवला आफिसमें ही तिलोयपण्णत्तीके अनुवादका कार्य प्रारंभ हुआ। और गजपंथकी बैठकमें जीवराजग्रन्थमालाका जन्म हुआ। और उसीसे ही तिलोयपण्णत्तीके प्रकाशनका निर्णय हुआ। कुछ समय बाद

और जैनत्वका सन्देश देने वाले जैनसन्देशमें छपनेको भेजा। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके सम्पादक भी उसे छापनेमें हिचकिचाए, वह लेख इसी अंकमें पत्रमें प्रकाशित किया जा रहा है।

उसका छपना प्रारम्भ हुआ। प्रथम भागके प्रथम पृष्ठसे ही मैं उसके संदिग्ध मूल पाठोंके संशोधन और अर्थ-निर्णयमें सहयोग देता रहा। धीरे धीरे यह स्पष्ट हुआ कि प्रो० उपाध्येको भेजे जानेवाले प्रूफकी एक कापी संदिग्ध स्थलोंके निर्णयार्थ मुझे दी जाने लगी — ताकि घर पर ~~अवकाश और~~ अवकाशके समय शान्तिके साथ संदिग्ध अशुद्ध पाठोंका संशोधन और अर्थ-निर्णय कर मैं प्रो० सा० को दे सकूं ~~किया जा सके~~। कुछ दिनों तक यह क्रम जारी रहा। इस बीच मुझे अनुभव हुआ कि प्राकृतके प्रकांड विद्वान् कहे जानेवाले दोनों प्रोफेसरोंके ~~लोगोंके~~ सामनेसे प्रेसकापी, अनुवाद एवं अनुवाद-शोधन आदिके रूपमें अनेक बार उन संदिग्ध स्थलोंके निकल जानेपर भी वे पाठ न अभी तक शुद्ध हो सके हैं और न उनके अर्थका निर्णय ही हो सका है। उनके संशोधन और अर्थ-निर्णयमें मेरा जो शक्ति और समय लगता था, उसपरसे प्रो० सा० से मैंने यह जानना चाहा — कि ग्रन्थके मुद्रित होनेपर उसका टाइटिल पेज आदिपर क्या रूप रहेगा? ऐसा पूछनेका खास कारण यह था कि हमारे द्वारा सम्पादित षट्खण्डागम पर प्रो० उपाध्येका ~~उनका~~ नाम व्यवस्थितरूपसे संशोधक सहायक के रूपमें चल रहा था। जबकि यथार्थ रूपमें उनके सामने प्रथम भागकी प्रेसकापीके केवल दो सौ पेज ~~उनके समक्ष~~ भेजे गये थे — जिसका कि उल्लेख उसी भागकी प्राक्कथनमें स्पष्ट रूपसे किया ~~ही~~ जा गया है। इस बातको और उसके बादके प्रकाशनमें उनसे क्या साहाय्य मिला, इसके बतलानेकी यहां आवश्यकता नहीं है। फिर भी जब प्रत्येक भागपर उक्त व्यवस्था अक्षुण्ण रूपसे चालू थी तब इतने कठिन श्रमके बाद सुलझाई हुई अनेकों गुत्थियोंके सुलझानेपर उक्त जिज्ञासाका होना स्वाभाविक था। ~~परन्तु~~ उक्त प्रश्नपर प्रो० सा० से जो उत्तर मिला उसे सुनकर दंग रह गया। फलस्वरूप उक्त व्यवस्था बन्द कर दी गई और आफिसके समयमें ही नहीं सुलझनेवाले पाठोंके संशोधनार्थ पूछे जानेपर यथाशक्ति सहयोग देता रहा। फिर भी प्रो० उपाध्येने धवलाके जितने पाठोंका संशोधन किया होगा — उनसे उनके द्वारा सम्पादित तिलोयपण्णत्तीके मेरे द्वारा संशोधित पाठोंकी संख्या (शतगुणी) [गिनी जानेपर] अवश्य निकलेगी — और आश्चर्य की बात नहीं, जो शायद यह बात रहें अभी तक अविदित ही रहे।

चार पांच दिन आराम करनेपर तबियतमें कुछ सुधार मालूम पड़ा और मैं कामपर जाने लगा। ता० २७-१-८३को बैरि० जनताप्रसाद सक्सेना कुछ लोगोंके साथ आफिसमें आये और साधारण शिष्टाचारके बाद ही लगे ऊट पटांग सैकड़ों तरह की बातें करने। मैं एकदम आश्चर्यमें आ गया कि आखिर मामला क्या है? बातोंके सिलसिलेमें उनके मुखसे कुछ ऐसी बातें निकलीं जिनसे समझ पड़ा कि प्रो० सा० ने मेरे विरुद्ध कई अन्यथा बातें उनसे कही हैं। मैंने अत्यन्त शान्त चित्तसे कहा — यदि आप सचमुचमें जज हैं तो एक तरफकी सुनकर जजमेन्ट देना ~~अनुचित~~ उचित नहीं। शान्तिके साथ दोनों ओरकी सुनिए और यदि मैं अपराधी सिद्ध होऊं — तो जो भी आप दंड देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा। परन्तु वे अपनी प्रकृतिके अनुसार अपना लेक्चर देते ही रहे। मुझे उनके इस व्यवहारसे — खासकर अनिद्राके विषयमें प्रो० सा० द्वारा बेसिर-पैर के कारण सुझाये गये सुननेसे अत्यन्त सन्ताप और उद्वेग हुआ परन्तु फिर भी मैंने डायरी लिखते समय इस घटनाका उल्लेख तक न किया, ~~करके~~ और रोजाना की तरह दैनिक कार्यका विवरण रजिस्टर पर लिख कर वक्त हो जाने से घर पर चला आया। इन पिछले दिनोंमें जो थोड़ी बहुत नींद आना प्रारंभ हुआ था - वह पुनः रफूचक्कर हो गई। लगातार तीन दिन तक यही हालत रहनेपर और 'चेतस्तापोऽशुभास्रवः' जानकर मैंने उचित समझा कि इस कार्यसे सदाके लिए विराम ले लूं। तदनुसार ता० ३०-१-८३के शामको प्रो० सा० से सारी स्थिति सामने रखकर सदाके लिए विराम (अवकाश) चाहा तो उत्तर मिला कि आप बीचमें काम अटकाकर अड़ंगा डालना चाहते हैं। मुझे बहुत आश्चर्य तो इस बातपर हुआ कि न तो वर्तमान स्थिति ही सुधारना चाहते हैं और न मुझे छोड़ना ही चाहते हैं। जब मैंने कहा कि आजकल जब मेरा अनिद्राके कारण मेरा दिमाग ही कुछ काम नहीं कर रहा है, तब ~~क्या किया~~ सिवाय पृथक् होनेके और क्या किया जाय? बोले ~~दो~~ माह ~~की~~ दो माह की छुट्टी पूर्ण आराम होनेके लिए दी जा सकती है।

(मैंने कहा, अच्छी बात है एक करनी है तो यही सही।)

मैं उस दिन तो डायरी भरकर चला ही आफिससे आया था अतएव दूसरे दिन कामपर गया और वह ~~दिन~~ मासका अन्तिम दिन था उसदिन कामकरने की कोशिश भी की। परन्तु जब दिन कामपर बिलकुल ही

नहीं लगा तब डायरीमें यह लिखकर चला जाता कि "तीन दिन पूर्व मैनेजर जगन्नाथप्रसादजी सा० के द्वारा असभ्यतामें सस्नेह और स्वतन्त्रबुद्धिपूर्वक कहे गये उलाहनेका दिल व दिमाग पर इतना बुरा असर पड़ा कि उसी दिनसे नींद आना फिर बन्द हो गया है। कोशिश करनेपर भी अनिद्रा बढ़ती जा रही है। रात रात भर नींद न आनेसे आज कोशिश करनेपर भी काममें चित्त नहीं लगता। तबियत पुनः एकबार लम्बे आरामको विवश हो गई है। अतः अधिकारी जन मुझे पुनः एक लम्बे समय तक आराम देनेकी कृपा करें ताकि मैं अति शीघ्र स्वस्थ होकर पुनः कामपर लौट सकूं। जब चित्तमें शान्ति हो, तब कार्य कर सकूं, एतदर्थ मैनु० की फाइल साथ ले जा रहा हूं। चित्त शीघ्र पूर्ण शान्त बने और कार्य शीघ्र प्रगतिशील हो, इस भावनाके साथ आज आफिससे जा रहा हूं।"

पाठकगण, स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि प्रो० सा० द्वारा किए गए दोषारोपण कहां तक सच हैं और उन्होंने जो मार्ग स्वीकार किया है वह कहां तक समुचित है !!! यदि प्रो० सा० का कहना सचमुचमें सच है, तो क्यों नहीं वह सब पत्र-व्यवहार समाजके सामने रख देते हैं जो कि मेरे और उनके बीच हुआ है। ~~जिससे~~ ~~इससे~~ परिश्रम और यशको ~~स्वयं~~ हड़पकर अधम मार्ग ~~जो~~ स्वयं स्वीकार करते हैं, ~~और~~ उसीको दोषी बनाते हैं, ~~इसीको कहते~~ हैं यह एक बड़े आश्चर्य की बात है !!!

(margin insertion: जिनके किसमाजको भी सम्पूर्ण स्थितिका पता चल जाय और ज्ञात हो जाय कि दोनोंमें कौन सच्चा और कौन झूठा है, [illegible] जो दोष लगाए गए हैं [illegible] जिनका [illegible])

आशा है पाठकगण खासकर मेरे वे सब हितैषी मित्र, जिन्होंने इस विषयमें मेरे से पूछताछ की है, और जिन्हें मैं उत्तर तक नहीं दे सका हूं, ~~इन सबका~~ ~~स्पष्टीकरण~~ से यथार्थ परिस्थितिसे परिचित हो सकेंगे।

(margin insertion: (1) [illegible] (2) पाठशाला और बालमंदिर दोनोंमें ही पढ़ाने वाले [illegible] अध्यापक हैं। [illegible] कि दोनों ही [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] कि २४ जनवरीको पाठशाला और [illegible])

[illegible] ४ [illegible] को प्रकाशित [illegible] उनके [illegible] दोषारोपण करते हैं !!

(2) मैंने तब क्या आज [illegible] भी कोई [illegible] नहीं किया है। [illegible]

(3) मेरे [illegible] [illegible]

इस प्रकार [illegible] पाठक [illegible] सकते हैं कि [illegible] [illegible] मार्ग स्वीकार कर सकता है।

श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र शिताबराय

जैन साहित्य उद्धारक फंड

मंत्री और सम्पादक
प्रो. हीरालाल जैन, एम. ए., एल्.एल्. बी.,
किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती.

कार्यालय–अमरावती,
किंग एडवर्ड कालेज.

तारीख 2-2-43

सेवा में—

पं. हीरालालजी शास्त्री, न्यायतीर्थ,
अमरावती

प्रिय पंडितजी,

आपकी वर्तमान मनोवृत्ति और क्रिया को देखकर बड़ा खेद और विषाद हो रहा है। मेरी अनुपस्थितिमें मैनुस्क्रिप्ट की फाइल व आफिसके ग्रंथ आदि लेजाकर बिना आफिस का चार्ज किसीको सम्हलवाये आप बैठ रहे हैं। आपसे पूछा क्या कैसी छुट्टी चाहते हैं, आप जवाब नहीं देते। फाइल आदि आप किसलिये रखे हैं। पूछा क्या आप ... कार्य कर रहे हैं, इसका भी कोई जवाब नहीं। फाइल आदि लौटाने को कहा, आपको बुलाया, तो आपने फाइल लेकर दो घंटे में आने को कहा, पर आये नहीं। पं. बालचंद जी को समझाने भेजा, उनसे आपने कह दिया कि, फाइल लौटाने की मेरी मंशा नहीं और न चपरासी मेरे यहां आवे। फिर भी मैं चपरासीको आपकी नेशरमाके [illegible] दो बार भेजता हूं, पर आप इसकी उपेक्षा करके मेरी किसी भी बातका जवाब नहीं देते। आफिसकी चाबी तक आप लिये बैठे हैं। प्रेससे प्रूफ व [illegible] मैनुस्क्रिप्ट आदि भी आपको अभी तक वापिस दे भेजे गये, उन सब कागजातों को आप दबाते जाते हैं और मंगाने पर भी लौटाते नहीं। आखिर आप चाहते क्या हैं, इसका भी पता तो चले। भलमनसाहतका मार्ग छोड़ आप किस अभिप्रायसे इस कलंककारी, कपटी और विश्वासघातके मार्गका अवलम्बन कर रहे हैं यह समझमें नहीं आता। इस समय मुझे आपकी बुद्धिपर तरस आ रहा है। थोड़ीसी इमानदारी देखकर आप

अपने आगे पीछे की कठिनाइयों को भूल रहे हैं। [illegible] आपने
[illegible] का और [illegible] का भी ख्याल करें मैं। [illegible]

मैं इस हफ्ते भर से बड़ी असमंजस में रहा हूं। एक ओर [illegible] मैं आपको न [illegible] बाजुओं को [illegible] नहीं डालना चाहता। दूसरी ओर मेरे ऊपर संस्था की [illegible] [illegible] है। आप संस्था को तहस नहस करने [illegible] रहा है। अब और अधिक कालतक मैं इस अवस्था को [illegible] और [illegible] नहीं [illegible] सकता। संस्था के सदस्यों को [illegible] परिस्थिति का परिचय करा देना [illegible] आवश्यक [illegible] होता है। इसलिये मैं [illegible] को भेज देना उचित समझता हूं ताकि आपके द्वारा [illegible] की हुई इस [illegible] परिस्थिति में [illegible] [illegible] हो। आप को [illegible] में [illegible] [illegible] चाहता, इसीसे मैं दो रोज [illegible] और [illegible] आपकी सुबुद्धि जाग्रत होने की बाट देखूंगा। [illegible] परिस्थिति मेरे हाथ में नहीं रहती, मैं [illegible] ओर से अब [illegible] अंतिम बार आपके यहां भेजता हूं।

सूचना

मुझे अत्यन्त दुःख के साथ प्रगट करना पड़ता है कि [illegible] षट्खंडागम (धवल सिद्धान्त) के आगामी [illegible] के प्रकाशन में एक बड़ा विघ्न आ उपस्थित हुआ है। [illegible] माह से मेरे [illegible] पं. हीरालाल जी [illegible] की प्रवृत्ति [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] गई है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि इन दोनों [illegible] [illegible] हो गया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] ने भी उन्हें [illegible]। [illegible] परिणाम [illegible] हुआ है कि [illegible] [illegible] [illegible] तब पंडितजी [illegible] [illegible]

[illegible]

बम्बई
५-२-४९

प्रियवर पंडितजी, मैं आठ दिनों से खाट पर पड़ा हूँ। कोई काम नहीं कर सका। इन्फ्लुएंजा हो गया था। कमजोरी से अभी परेशान हूँ। आपके पत्रों का उत्तर भी नहीं दे सका हूँ। पत्रों सहित [illegible] एक लम्बा पत्र आया है, इसलिए शायद लेटे भी यह पत्र लिखने बैठा हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि आप काफी अनुभव प्राप्त करके और तार्किक उत्तर भी फिर क्यों ऐसी गलती से जाते हैं। भला यह भी कोई बात है कि आपको दो पहर को नींद आ जाती है, इसलिए १२ से २ तक पढ़ा नहीं सकेंगे! जिन्होंने बुलाया है उनके सुभीते का खयाल भी तो करना पड़ता है। उनको जो समय अनुकूल हो उसके अनुकूल अपने को बनाना चाहिए। फर्क के लिहाज से और लिहाज विधान से भी। और जो काम आप बाबाजी आदि पाने के और बच्चों को स्कूल भेजने आदि सेठों से कराना चाहते हैं, वे प्रेम से अपना प्रभाव डालकर या अन्य तरीके से कराये जा सकते हैं, इस तरह जोर डालकर नहीं। आशा है, आप बने बनाये काम को बिगाड़ेंगे नहीं और सब बातों को सोचकर समझौते का मार्ग अख्तियार करेंगे। सेठजी ने जो बातें लिखी हैं उनसे पढ़कर मुझे

जैन संदेश
ता. १८ मार्च सन् ५७ पृ. ३ से

शास्त्रीजी का सम्बन्ध-विच्छेद

इधर लिखनी निकली पं. प्रेमचन्दजी जैन दिल्ली [illegible] से पं० [illegible] और सि० शा० और [illegible] के [illegible] सहयोग से प्रकट करके पं० हीरालालजी शास्त्री का जैन साहित्य उद्धारक फंड के साथ का समस्त झगड़ा निपटा दिया और पं० हीरालालजी शास्त्री से संस्था को कुछ लेना देना का सम्बन्ध नहीं रहा।

COUPON: The remitter may write [illegible]

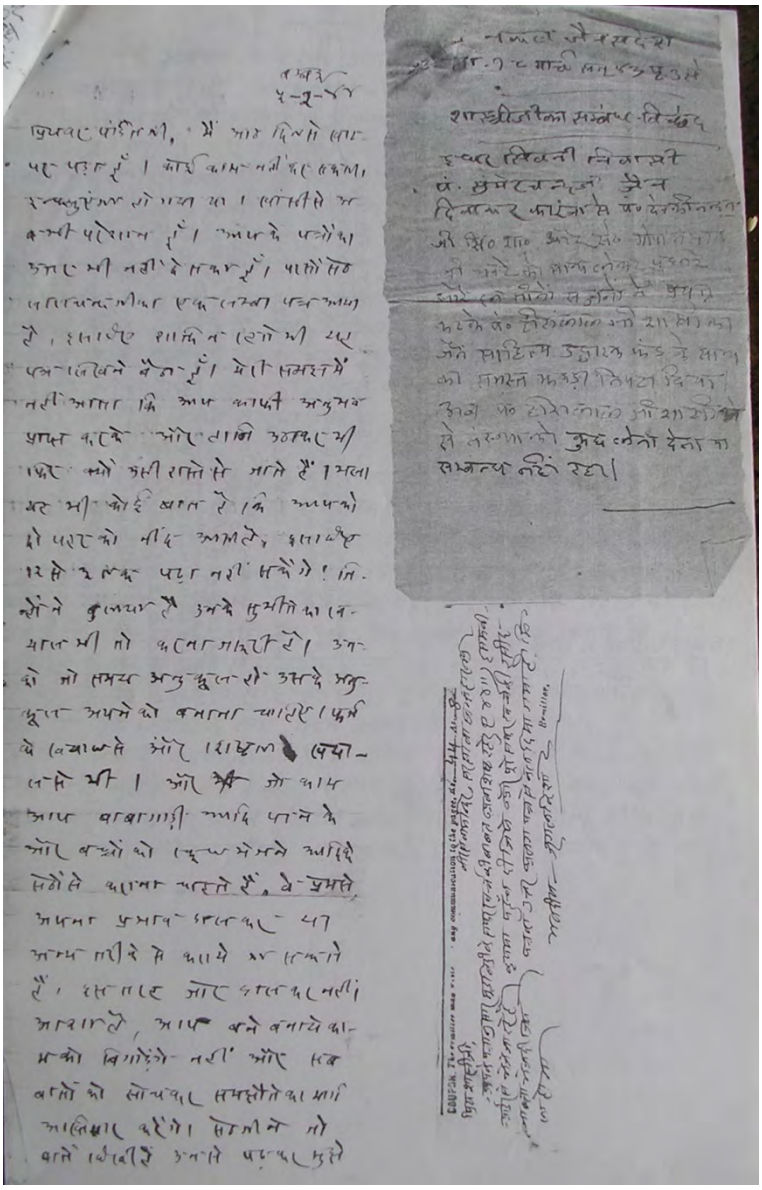

जी ने मूडबिद्री से पं० लोकनाथजी शास्त्री के मार्फत मंगवाई थी और पं०
गजपति उपाध्याय उन्हें लेकर सहारनपुर आये थे। ~~इस कार्य में लाला~~
~~[illegible]~~। मगर वे ग्रन्थ कनड़ी लिपि में थे। लालाजी
के स्वर्गवास हो जाने के बाद उनके ~~सुपुत्र~~ सुयोग्य पुत्र रा० सा० लाला
प्रद्युम्न कुमारजी सा० ने मूडबिद्री से पं० विजयचन्द्रैया को बुलाया था।
वे कनड़ी पत्रों को पढ़ते जाते थे और पं० सीताराम शास्त्री नागरी में
लिखते जाते थे। पीछे इसी नागरी प्रति के आधार से पं० सीतारामजी
शास्त्री ने अन्य प्रतियां करके अन्य स्थानों पर बेचीं। आज जो इनका हिन्दी
अनुवाद सहित प्रकाशन हो रहा है उस सबका श्रेय श्रीमान् स्व० ला०
जम्बूप्रसादजी और श्रीमान् रा० सा० ला० प्रद्युम्न कुमारजी को है, यदि वे
(हजारों रुपया लगाकर) इन ग्रन्थों को न मंगाते, और नागरी में प्रतिलिपि न कराते तो आज इस प्रकार उनके भाषा में निकलने
उनके दर्शन सुलभ न होते।

आवश्यक सूचना

मुझे अत्यन्त दुःखके साथ प्रगट करना पड़ता है कि इधर श्री जयधवला (धवलादि ग्रन्थ) की सम्पादन प्रकाशन सम्बन्धी व्यवस्थामें एक बाधा सी उपस्थित हुई है। इधर कई मासले मेरे सहयोगी पं० हीरालालजी शास्त्रीकी रुचि अन्य कार्योंकी ओर विशेष बढ़ती गई है और संपादन प्रकाशन सम्बन्धी कार्योंमें वे उत्तरोत्तर शिथिल प्रयत्न होते गये हैं। दिवालीके पश्चात् उन्होंने एक जैन पाठशाला व बालमन्दिर अपने ही निवासस्थान पर खोलने और व्यापारमें भी विशेष रुचि बढ़ाई। इधर साढ़े डेढ़ मासले तो हालत यहां तक आ पहुंची कि मुद्रण सम्बन्धी कार्य तो प्रायः रोक ही देना पड़ा। जब मैंने बार बार [illegible] और [illegible] देकर काम करने या छुट्टी लेनेकी सलाह दी [illegible] तब अकस्मात् एक दिन [illegible] जनता [illegible], बाबू [illegible] जैनी [illegible] तथा सिंघई [illegible] जी ने उन्हें समझाया। किन्तु परिणाम यह हुआ कि गत [illegible] ता. ३० जनवरीको जब मैं नागपुर गया था, तब पंडितजी बाबू [illegible] की अनुपस्थितिमें और [illegible] मित्र प्रकार लिख गये—

"तीन दिन पूर्व [illegible] जनता [illegible] के द्वारा अखबारोंमें [illegible] और [illegible] उस दिन व दिमाग पर इतना [illegible] कि उसी दिनसे नींद आना फिर बन्द हो गया है। [illegible] करनेकी अतिशय [illegible] है। इस हालत नींद न आनेसे आज [illegible] करने पर भी [illegible] चित्त नहीं लगता। [illegible] पुनः एक बार लम्बे आरामकी [illegible] गई है। अतः आज [illegible] मुझे पुनः एक लम्बे [illegible] आराम देना [illegible] जब [illegible] हो, तब कार्य कर सकूं। [illegible] में अति शीघ्र स्वस्थ होकर पुनः [illegible] हूं। [illegible] छुट्टी लेकर जा रहा हूं। [illegible] शीघ्र पूर्ण शान्त बने और कार्य शीघ्र प्रकाशित हों, इस भावनाके साथ आज आपसे [illegible] जा रहा हूं।"

जब मैं [illegible] नागपुरसे वापिस आया तब मैंने पंडितजीको पत्र लिखा, उन्हें बुलाने व सब बात साक्षात् जाननेका प्रयत्न किया। किन्तु [illegible] बार बार [illegible] भी न पंडितजी आये और न कई दिनों तक भी पत्रोंका कोई उत्तर दिया और न [illegible]। आफिसमें देखता हूं तो [illegible]

आगे के विषयमें सम्बन्ध रखनेवाले सब प्रेस व व्यवस्थापकोंके टाइपराइटर्स व [illegible] सैकड़ों पत्र भी पंडितजी ले गये हैं।

एक धार्मिक ग्रन्थ जिसके टेक्स्ट व अनुवादका मिलान हो चुका था, जिसके तीन प्रूफ पंडितजी देख चुके थे और पं. बालचन्द्रजी के साथ मिलान भी कर चुके थे तथा जिसे स्वयं उन्होंने मेरे पास प्रिंट आर्डर के लिये भेजा था, उसको मैंने निश्चित प्रणालीके अनुसार संशोधन कर यह लिखकर प्रेसको भेज दिया कि 'शोधकर और फिर एक बार पंडितजीको दिखाकर छाप दीजें।' पर जब शोधित प्रूफ पंडितजी के पास गया तब कहते हैं उन्होंने उसकी फाइलकी फाइल अपने पास रोक ली, किन्तु प्रेसकी प्रेरणा पर उन्होंने केवल वह फार्म यह लिखकर मेरे पास भेज दिया कि 'इस फार्ममें अनेक अशुद्धियां हैं, जहां पहले इस फॉर्ममें अनुवाद और व्याख्या उपलब्ध मिलती है, मैं इसे छापनेकी स्वीकृति नहीं दे सकता' इत्यादि।

पंडितजी की इस शोचनीय अवस्थाका विचार करते हुए तथा बार बार प्रयत्न करने पर भी उनके प्रेस कॉपी व अन्य सब सामग्री वापिस न करनेपर ता. ८ को इसकी रिपोर्ट पुलिसमें देनेका निश्चय किया गया। तब कहीं पंडितजीने वही प्रशस्ति वाले ग्रन्थ की फाइल और [illegible] की दोनों प्रतियां वापिस कीं। पर जयधवलाके पत्र व अन्य आवश्यक ग्रन्थ उन्होंने अभी तक भी वापिस नहीं किये। जयध. के फर्मोंके लिये उसके अधिकारी संघके ट्रस्टी भी चिंतित हो रहे हैं और प्रेस तकाजा कर रहे हैं। पंडितजी की मानसिक अवस्था शोचनीय अवश्य है, पर वे बीमार नहीं हैं क्योंकि जिस दिनसे उन्होंने आफिस आना बन्द किया है उसी दिनसे वे अपने मकानकी मरम्मत करानेमें जुटे हुए हैं तथा [illegible] के इन्तजाम व [illegible] सम्बन्धी [illegible] मौजूद रहते हुए देखे जाते हैं। पंडितजीके व्यवहार व उनकी वर्तमान प्रवृत्तिसे [illegible] विवश होकर ता. ११ को पंडितजीको रजिस्टर्ड नोटिस देकर संस्थाके कार्यसे पृथक् कर देना पड़ा है और उनसे शेष ग्रन्थादि वापिस मांगे गये हैं। यदि आवश्यकता हुई तो अत्यन्त खेदके साथ आगे कार्यवाही करनी पड़ेगी।

यद्यपि पंडितजीने यह सब कुछ केवल सम्पादन-प्रकाशन कार्यमें ही गड़बड़ डालनेके अभिप्रायसे किया है, पर हम आशा करते हैं कि इससे प्रस्तुत कार्य में विघ्न पड़ेगा नहीं; उसमें कुछ विलम्ब भले ही हो। यदि पंडितजी संस्थासे पृथक् ही होना चाहते थे, तो वे सौजन्य और [illegible] से भी हो सकते थे। पर उन्होंने यह प्रकार क्यों चुना, यह हमारी समझमें नहीं आता। जैनसमाजके एक सिद्धान्तशास्त्री और [illegible] विद्वान्‌की [illegible] ऐसी नीची [illegible] उतर आना बड़ा ही खेदजनक है।

— हीरालाल जैन

मंत्री व सम्पादक जैन सा. उ. फं. [illegible]

हाल मेजरला गवालियर।
२५-९-४२

श्रीमान मुरुक्तार पं० जुगलकिशोर जी स०
सादेनाम जयजिनेन्द्र.

आपका ता० १८-५-४२ का लिखा पत्र यथासमय मिल गया था और बाद में आप का पं० दौलतराम जी के द्वारा दी गई सूचनायें भी प्रो० सा० से यथासमय प्राप्त होती रहीं किन्तु मैं तबसे आज तक उत्तर देने के लिए अपने आपको रोके रहा और देखता रहा कि आपके द्वारा लगाए और स्वीकारे किये गये आरोप कहां तक सत्य हैं? आज [illegible] मुझे [illegible] मेरी [illegible] की बर्षी या वार्षिक श्राद्ध कराने के अवसर पर मेरी आत्मा मुझे यही लिखने के लिए प्रेरित कर रही है कि आप मेरी करतूत की कॉपी- जो कि मूल, अनुवाद और टिप्पणी [illegible] के रूप में आपको दे आया था प्रो० सा० के पास तथा वह सम्पादन-विषयक [illegible] जो कि आपने प्रकाशनार्थ भेजा था -

पत्र को कई बार पढ़ लेने पर भी मेरे बस उठाये गये निरर्थक प्रश्नों का रत्ती भर भी समाधान नहीं (हुआ है) और यह लिखना पड़ा है कि आपको उस तरह [illegible] [illegible] ऐसी धारणाएं उत्पन्न हो गई हैं कि जिनका निकालना मेरी शक्ति के बाहर हो गया है।

[illegible]

कारणा:

१
[illegible]

२
[illegible] और [illegible]

३
[illegible]

४
[illegible] २१०-२: [illegible]

५

पंडितजी के कहने
१ [illegible]

२
[illegible] और अनुवाद [illegible] [illegible] जाऊंगा
[illegible] तक जाऊंगा.

३
आदिकी आदमी [illegible], [illegible] और [illegible] आना पड़ेगा

४
[illegible]

५
वेतन, छुट्टी-आदि की [illegible] P.T.O

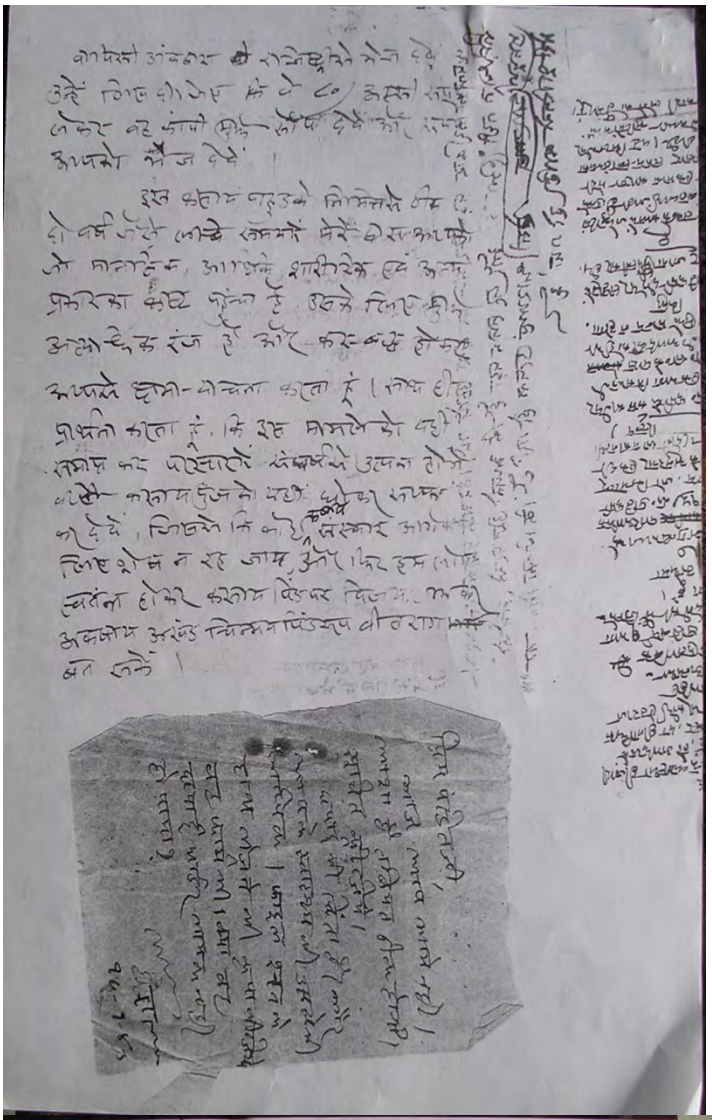

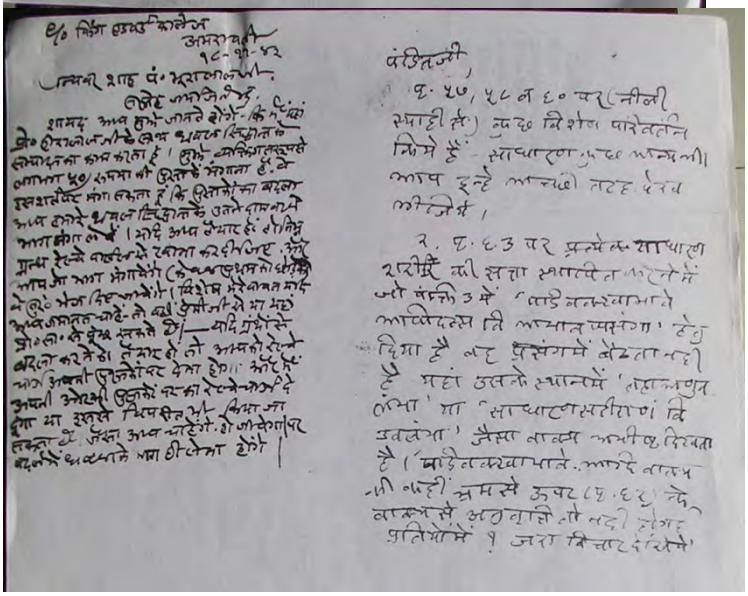

बोर्डरवाले अंकवार को राजेन्द्रजीको भेज देवें उन्हें लिखदीजिए कि वे ८० अगस्त तक लेकर वह कापी सीधी लौटा देवें और उसकी अपनको भेज देवें।

इस कलाम ... जिम्मेवारीने मैं ... दो वर्ष जो लोगोके समझमें मेरे ... आपको जो मानसिक, आर्थिक, शारीरिक एवं अन्य प्रकारका कष्ट पहुंचा है उसके लिए मुझे आन्तरिक रंज है और कर-बद्ध होकर आपसे क्षमा-याचना करता हूं। साथ ही प्रार्थना करता हूं कि इस मामलेको यहीं समाप्त कर पारस्परिक ... उत्पन्न होने वाले कषायपुंजको यहीं धोकर स्वच्छ कर देवें, जिससे कि कोई कषाय संस्कार आगेके लिए शेष न रह जाय, और फिर हम लोग स्वतंत्र होकर कषाय रहित ... अकषाय अखंड चिन्मय पिंडरूप वीतराग बन सकें।

C/o किंग एडवर्ड कालेज
अमरावती
१८-११-५२

मान्यवर श्रीमान पं. फूलचन्दजी,
सप्रेम जयजिनेन्द्र।

शायद आप मुझे जानते होंगे कि मैं यहां प्रो. हीरालालजीके साथ धवल सिद्धान्तके सम्पादनका काम करता हूं। मुझे व्यक्तिगत रूपसे लगभग ५० रुपया की पुस्तकें मंगाना है। मैं इस शर्तपर मंगा सकता हूं कि पुस्तकोंका बदला आप हमारे धवल सिद्धान्तके उतने दामकी आप मंगा लेवें। यदि आप तैयार हैं तो निम्न ग्रन्थ रेल्वे पार्सलसे रवाना कर दीजिए। और साथ जो आप मंगायेंगे (केवल धवल को छोड़कर) ... भेज दिए जावेंगे। विशेष मेरे बावत यदि आप जानना चाहें तो ... यहां प्रो. ला. से पूछ सकते हैं। — यदि ग्रंथोंसे बदला करते हो तैयार हो तो आपको रेल्वे चार्ज अपनी पुस्तकोंपर देना होगा। और रेल्वे चार्ज अपनी ओरकी पुस्तकों पर का रेल्वे चार्ज दे दूंगा या इससे विपरीत भी किया जा सकता है जैसा आप चाहेंगे। ... बदलेमें धवलाके भाग ही लेना होंगे।

पंडितजी,

पृ. ५७, ५८ व ६० पर (नीली स्याही से) कुछ विशेष परिवर्तन किये हैं। साधारण कुछ अन्य भी। आप इन्हें अच्छी तरह देख लीजिये।

२. पृ. ६३ पर प्रत्येक साधारण शरीरों की सत्ता स्थापित करने में जो पंक्ति ३ में 'बादरनिगोदप्रतिष्ठितात्... अन्यथानुपपत्तेः' हेतु दिया है वह प्रसंगमें बैठता नहीं है यहां उसके स्थानमें 'तहा... वा' या 'साधारणशरीराणां वि...' जैसा वाक्य अभीष्ट दिखता है। ... आदि वाक्य भी नहीं भ्रमसे ऊपर (पृ. ६२) के वाक्यसे आ गया तो नहीं होगा प्रतियोंमें ? जरा विचार देखिये।

श्री [illegible] नमः

१०-२-[illegible]

प्रो० [illegible] के भाषणों से नोट्स

नीति संबंधी

१ दो वर्ष तक [illegible] के लिए [illegible] ५०० रु० गबन.
२ [illegible] [illegible] की [illegible], जो [illegible]. [illegible] जो [illegible] आये — वे गबन.
३ अपने [illegible] [illegible] [illegible] को — जो कि [illegible] [illegible] में या [illegible] में आये थे — वे भी [illegible] [illegible] के नाम [illegible] [illegible] [illegible].
४ [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] और [illegible] व नौकरों से [illegible] [illegible].
५.

आचार ~~विचार~~ संबंधी

१ ~~स्वदेशी~~ का दिखावा होना.
२ अपने बच्चियों का विवाह अन्य जातियों में करना. जिनको कि मां की जात-पांत का पता नहीं और जो अपने आप [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है:
३ खान-पान [illegible] सिगरेट, शराब का उपयोग करना, [illegible] के साथ एक टेबिल पर बैठकर खाना.
४ [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] में [illegible] २-२ [illegible] [illegible] होगए.
~~५ [illegible]~~.
५ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पं. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. आदि.

विचार या श्रद्धा संबंधी

१ [illegible].
२ ये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]:
३ [illegible] [illegible] विश्वास नहीं।
४ [illegible] [illegible] [illegible].
५

प्रचार संबंधी

१ [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] को [illegible] [illegible].
२ [illegible] [illegible] [illegible] का भी [illegible].
३ [illegible] पर ~~[illegible]~~ भी [illegible]।
४ हिन्दू-[illegible] ~~[illegible]~~ [illegible] [illegible]
५ [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] २ [illegible] २ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

पं० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन

सेठजी की नसियां, ब्यावर (राजस्थान)

दि० ८-६-७४

श्रीमान् सेठ बालचंदजी देवचंदजी शहा,

मंत्री- जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर ।

सविनय जय जिनेन्द्र,

मुझे ज्ञात हुआ है कि आपकी उक्त ग्रन्थमाला से हाल में ही प्रकाशित षट्खंडागम की प्रथम पुस्तक के द्वितीय संस्करण में से `सह-सम्पादक` के रूप में मेरा और पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री नाम हटा दिया गया है और डा० ए० एन० उपाध्ये का नाम `सह-सम्पादक` के रूप में दिया गया है ।` यह बात बहुत आपत्ति के योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ से सर्वथा विपरीत है । उक्त पुस्तक के प्रथम संस्करण में दिये गये नामों एवं सम्पादकीय-प्रकाशकीय वक्तव्यों से आप उक्त बात की यथार्थता भली भांति जान सकते हैं । आप जैसे सुविज्ञ मंत्री के रहते हुए ऐसा क्यों हुआ, यह बात अति आश्चर्य एवं खेद-जनक है ???

इस सम्बन्ध में मेरा आपसे निवेदन है कि आप तत्काल ही उक्त पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रथम संस्करण के समान सम्पादक-मंडल के नामों को मुद्रित कराकर जोड़ें और इस सम्बन्ध में जो नवीन संशोधन किये गये हैं, उन्हें रद्द करें । साथ ही जब तक पूर्ववत् ४ उक्त संशोधन न की जाय, तब तक उसकी बिक्री, भेंट और प्रचार आदि बन्द रखा जावे ।

आशा है कि आप तत्काल समुचित कार्यवाही कर हमारे और पं० फूलचन्द्र जी के साथ हुए इस अन्याय का परिमार्जन करेंगे । यदि ऐसा नहीं किया गया, तो मुझे विवश होकर समाचार-पत्रों द्वारा समाज के सामने इस अन्याय को रखना होगा, और ऐसी हालत में डा० उपाध्ये तो बदनाम होंगे ही, साथ में ऐसे कई गडे मुर्दे भी उखड़ कर सामने आवेंगे, कि जिनसे स्व० डा० हीरालालजी तक भी लांछित हुए बिना नहीं रहेंगे । मैं नहीं चाहता कि जिनको `सन्मति` द्वारा अभी हाल में ही श्रद्धाञ्जलियां समर्पण की गई हैं, उनके यश में किसी प्रकार का धब्बा लगे ।

आशा ही नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप उक्त स्थिति को तत्काल संभालेंगे और हम दोनों के हृदयों में उत्पन्न हुई अशान्ति को शान्त करने का प्रयत्न करेंगे ।

आपका विनम्र

हीरालाल शास्त्री

(हीरालाल शास्त्री)